

वैश्विक तपन की बढ़ती गर्माहट

अरविन्द कुमार तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान विभाग
बी०एस०एन०वी० पी०जी० कॉलेज, लखनऊ-226001, उ०प्र०, भारत
tiwariarvind1@rediffmail.com

प्राप्त तिथि-31.07.2015, स्वीकृत तिथि-04.08.2015

धरती के ताप का बढ़ना पूरी दुनिया के लिए चिंताजनक एवं चिंतनीय विषय है। वैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने अपने नवीनतम अध्ययनों में पाया है कि ग्रीनहाउस गैसों के ताबड़तोड़ उत्सर्जन पर प्रभावी रोक नहीं लगा पाने के कारण ग्लोबल वार्मिंग की विश्वव्यापी समस्या और गंभीर होने लगी है और इससे नई बीमारियों तथा अन्य पर्यावरणीय संकट के फैलने का खतरा बढ़ गया है। वस्तुतः आज सम्पूर्ण विश्व के सामने अनन्य आर्थिक-राजनीतिक पेंचीदगियों से अधिक बढ़ा संकट वैश्विक तपन का पर्यावरणीय संकट बनने जा रहा है। वैश्विक तपन के कारण 21वीं शताब्दी में लू चलने, विनाशकारी मौसम और उष्णकटिबंधीय बीमारियों में बढ़ोत्तरी के कारण अनेक लोग मृत्यु की चपेट में आयेगे। समुद्री सतह में वृद्धि हो रही है, बाढ़ व सूखे की आशंका बढ़ रही है, खाद्यान्न में गिरावट आ रही है, तथा प्रति 10 वर्ष में लगभग 2.43 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि वसुधा के अस्तित्व को लीलने का कारण बनी हुई है।

वैश्विक तपन का अर्थ और कारण- जहाँ विश्व में एक ओर उच्च तकनीकी औद्योगिक गतिविधियाँ बढ़ रही हैं जो मनुष्य के विकास की सूचक हैं, वहीं दूसरी तरफ ग्लोबल वार्मिंग की गर्माहट भी बढ़ रही है जो भावी मानवता के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। विश्व भर के पर्यावरणविद् लम्बे समय से चिंतित हैं कि कार्बन डाई ऑक्साइड तथा फ्लोरो कार्बन समूह की गैसों के निरंतर उत्सर्जन से, ग्रीन हाउस प्रभाव के चलते, दिनों-दिन धरती का तापमान बढ़ता जा रहा है। पृथ्वी के वायुमंडल में अनगिनत गैसों के घनत्व प्रक्रियात्मक रूप से बनते रहते हैं। इन गैसों में कार्बन डाई ऑक्साइड, ओजोन, नाइट्रस ऑक्साइड, मीथेन आदि होते हैं। सूर्य की किरणों, ओजोन मंडल में बिछी ओजोन पट्टिका से छनकर पराबैंगनी किरणों से मुक्त होकर आती हैं। पृथ्वी पर फैले संसाधनों को इस प्रकार आवश्यक ऊष्मा मिलती है तथा पृथ्वी से अनावश्यक ऊष्मा का पलायन भी इसी प्राकृतिक कार्य का महत्वपूर्ण भाग है। ग्रीन हाउस गैसों के असंतुलित होने के कारण पृथ्वी की गर्मी बाहर नहीं जा पाती है और इस प्रकार विश्वव्यापी तापमान में वृद्धि होती है।

वैश्विक तपन का दुष्प्रभाव- पृथ्वी पर बढ़ते तापमान से अतिवृष्टि, अल्पवृष्टि के अलावा समुद्र की जल राशि बढ़ने लगती है। बर्फ का पिघलना और समुद्र के जल स्तर का ऊपर आना पृथ्वी के जलमग्न हो जाने की संभावना को बढ़ाता है। पिछले सौ वर्षों से पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ता जा रहा है। अगर ऐसा ही चलता रहा तो सन् 2100 तक समुद्र का जल स्तर एक मीटर तक वृद्धि कर सकता है। वैज्ञानिकों का यह भी निष्कर्ष है कि वायुमंडल में तापमान वृद्धि के कारण पृथ्वी की अपनी धुरी पर घूमने की रफ्तार भी कम होती जा रही है।

वैश्विक तपन को नियन्त्रित करने के लिए किये गये प्रयत्न- सन् 1959 में अमेरिका के वैज्ञानिक प्लास ने कार्बन डाई ऑक्साइड व क्लोरो फ्लोरो कार्बन गैसों के पर्यावरण पर पड़ते असर को रेखांकित किया। लेकिन ठोस आकड़ों का अभाव बताकर विकसित देशों ने स्थिति की गंभीरता स्वीकारना उचित नहीं समझा। यह समस्या सन् 1974 में कार्बन डाई ऑक्साइड व तापमान वृद्धि के सम्बन्धों को दर्शाते हुए कम्यूटर मॉडलों व तत्सम्बन्धी अनुसंधानों के माध्यम से सुलझा ली गयी और तब कहीं जाकर विकसित देश कुछ सचेत हुये और उसके पाँच वर्ष बाद 1979 में जेनेवा में प्रथम जलवायु सम्मेलन में समस्या की गम्भीरता समझी गई। इसके बाद वर्ष 1980 में ऑस्ट्रिया में आयोजित संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम व विश्व मौसम विज्ञान संगठन की बैठक में जलवायु परिवर्तन के एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या के रूप में स्वीकृति प्रदान की गयी, हालाँकि तब तक बहुत देर हो चुकी थी और धरती की आजोन परत में क्षरण होना शुरू हो चुका था। सन् 1985 में वियना कन्वेंशन, 1987 में मांट्रियल प्रोटोकॉल, 1988 में टोरंटो सम्मेलन, 1997 में क्योटो प्रोटोकाल सरीखे अनेक आयोजन पर्यावरण को बचाये रखने के सिलसिले में हो चुके हैं। क्योटो प्रोटोकाल के तहत ग्रीन हाउस गैसों के विस्तार में सन् 2008 से 2012 के बीच यूरोपीय संघ को 8 प्रतिशत, अमेरिका को 7 प्रतिशत, जापान को 6 प्रतिशत और कनाडा को 3 प्रतिशत कटौती करने का लक्ष्य रखा गया था। इसके उल्लंघन पर दण्ड का प्रावधान भी रखा गया लेकिन वस्तु स्थिति यह है कि अभी तक केवल 83 देशों ने इस समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं जिनमें विकसित देशों में से केवल 14 देश हैं।

संभावित उपाय- वस्तुतः ग्लोबल वार्मिंग एक ओर बढ़ती औद्योगिक तकनीक और अधिकारिक व्यापार बढ़ाने के लिए अधिकाधिक उत्पादन करने एवं विश्व संगठनों के अत्यधिक दोहन का प्रश्न है। वहीं दूसरी ओर न केवल मानवता को बल्कि पूरी वसुधा को समुद्र में डूबने से बचाने और इस तरह समस्त अस्तित्व को बचाये रखने की चुनौती है। विकासशील और

अल्पविकसित देशों का यह दायित्व है कि वे पर्यावरण सम्बन्धी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में वैश्विक तपन के प्रश्न को न केवल अधिक गंभीरता से उठाये अपितु विकसित देशों पर दबाव भी बनाएं और ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की ओर विश्व को ले जाने का वातावरण बनाएं। हमें प्रत्येक स्थिति में इस वसुधा के अस्तित्व को बचाना है। इसके लिये हमें औद्योगिक तकनीक, उत्पादन प्रक्रिया और व्यापारिक वृत्ति पर इस तरह से पुनर्विचार करना होगा कि आज का मनुष्य अपने तकनीकी वैभव को भी बढ़ा सके और जीवित भी रह सके।

संदर्भ

1. ग्रीन एकाउण्टिंग फॉर इण्डियन स्टेट्स एण्ड यूनियन टेरिटरीज प्रोजेक्ट रिपोर्ट, वर्ष 2004।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ की इण्टर गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेन्ज रिपोर्ट, वर्ष 2012
3. जलवायु परिवर्तन पर वियना सम्मेलन, वर्ष 1985।
4. मान्द्रियल प्रोटोकाल, 1987 में ओजोन अवक्षय के लिये उत्तरदायी पदार्थों के उत्पादन एवं उपयोग में कटौती किये जाने सम्बन्धी रिपोर्ट।
5. लंदन सम्मेलन, वर्ष 1990, ऑन "क्लोरो फ्लोरो कार्बन"।